मार्क्स, गांधी और अम्बेडकर

गांधी मार्क्स और अम्बेडकर के बीच तुलनात्मक विवेचना कठिन कार्य है क्योकि गांधी की तुलना मे मार्क्स और अम्बेडकर कहीं नही ठहरते। तुलना के लिये आवश्यक है कि तीनो के लक्ष्य मे कुछ समानता हो भले ही मार्ग भिन्न ही क्यो न हो। यहॉ तो तीनो के लक्ष्य भी अलग अलग हैं और मार्ग भी । गांधी सामाजिक स्वतंत्रता को लक्ष्य बनाकर चल रहे थे । गांधी के लक्ष्य मे कही भी सत्ता संघर्ष नहीं था। वे तो सत्ता मुक्ति के प्रयत्नों तक सीमित थे। मार्क्स का लक्ष्य सत्ता परिवर्तन था । गांधी का लक्ष्य अकेन्द्रीयकरण था तो मार्क्स का केन्द्रीयकरण। अम्बेडकर का लक्ष्य तो और भी सीमित था। मार्क्स सत्ता को समस्याओं का समाधान बताते थे किन्तु स्वयं सत्ता सघर्ष मे नहीं थे किन्तु अम्बेडकर स्वयं प्रारंभ से ही सत्ता की तिकडम करते रहे। मार्क्स पूंजीवाद को हटाकर धनहीनों की सत्ता चाहते थे तो अम्बेडकर समाज व्यवस्था का लाभ उठा रहे सवर्णो के लाभ मे अवर्ण बुद्धिजीवियों का हिस्सा मात्र चाहते थे। गांधी किसी भी प्रकार के वर्ग संघर्ष के विरूद्ध थे तो मार्क्स गरीब अमीर के बीच तथा अम्बेडकर सवर्ण अवर्ण के बीच संघर्ष के पक्षधर थे। गांधी वर्ग संघष क परिणाम मे समाज टूटन विषरूपी परिणाम देखकर चिन्तित थे तो मार्क्स और अम्बेडकर वर्ग संघर्ष के परिणाम स्वरूप समाज टूटन को सत्ता रूपी मक्खन समझकर प्रसन्न होते थे। गांधी अधिकतम अहिंसा के पक्षधर थे तो मार्क्स अधिकतम हिंसा के और अम्बेडकर को हिंसा अहिंसा से कोई परहेज नही रहा। इतनी सारी विसंगतियों के बाद तीनो के बीच कैसे तुलना संभव है।

कुछ लोग कहते हैं कि मार्क्स का अन्तिम लक्ष्य शासन मुक्त व्यवस्था थी । यह एक ऐसा झुठ प्रचार था जिसका उसी तरह कोई सिर पैर नही था जिस तरह निर्मल बाबा के समोसे मे। अम्बेडकर जी का कथन बिल्कुल स्पष्ट था। उसमे मार्क्स के समान असत्य कल्पना नही थी। परिणाम स्पष्ट था कि मार्क्स के कथनानुसार चलने वालो को पूरा पूरा सत्ता सुख मिला जिसमे कहीं भी समाज के लिये गुलामी के अतिरिक्त कुछ और नही था तो अम्बेडकर जी के मार्ग पर सत्ता की दिशा चलने वालों को लूट के माल मे हिस्सा मिलना शुरू हो गया। समाज को न मार्क्स की दिशा मे गुलामी से राहत मिली न अम्बेडकर के मार्ग से। गांधी की चर्चा इसलिये संभव नहीं क्योकि गांधी तो स्वतंत्रता के पहले पडाव पर ही मार दिये गये। सत्ता के दो दावेदार गुटो मे से एक ने गांधी के विरूद्ध ऐसा वातावरण बनाया कि गांधी की शारीरिक हत्या हो गई तो दूसरे ने गांधी के वारिस बनकर ऐसा वातावरण बनाया कि गांधी विचारों की हत्या हो गई।

यदि हम भारत का आकलन करें तो यहॉ आपको मार्क्स की लाइन पर चलने वाले भी बडी संख्या मे मिल जायगें क्योकि इस लाइन पर चलने मे कहीं न कहीं सत्ता की उम्मीद है। अम्बेडकर की लाइन पर चलने मे भी लाभ ही लाभ है क्योकि वहां भी सत्ता मे हिस्सेदारी की पूरी व्यवस्था अम्बेडकर जी सदा सदा के लिये कर गये है। बेचारे गांधी के मार्ग पर क्या मिलने वाला है? क्यो कोई गांधी मार्ग पर चले । आज भारत मे बेचारे गांधी का हाल यह है कि यदि किसी से कहा जाय कि तुम्हारे बेटे के रूप मे गांधी का जन्म होने वाला है तो वह चाहेगा कि गांधी के रूप वाला बेटा पडोसी के घर चला जाय। उसे तो नेहरू बिडला या अम्बेडकर सरीखे बेटे से ही काम चल जायगा। गांधी की लाइन पर चलने वाले को न तो कोई व्यक्तिगत लाभ है न ही पारिवारिक। इस लाइन पर चलकर सिर्फ सामाजिक लाभ ही संभव है जिसमे चलने वालो का भाग नगण्य है। दूसरी ओर मार्क्स या अम्बेडकर की लाइन पर चलने वाले को व्यक्तिगत और पारिवारिक लाभ भरपूर है। इतना ज्यादा कि वह पूरे समाज के लाभ को भी अपने घर मे डाल रखने की शक्ति पा जाता है। बताइये कि आज के भौतिक युग मे कोई गांधी मार्ग पर क्यो चले?

यदि अम्बेडकर या मार्क्स मे आंशिक रूप से भी सामाजिक भाव होता तो वे श्रम, बुद्धि और धन के बीच श्रम की मांग और मूल्य बढने की बात करते जिससे आर्थिक सामाजिक विषमता कम होती । गांधी ने लगातार श्रम और बुद्धि के बीच दूरी घटाने की कोशिश की । अम्बेडकर को तो श्रम से कोई मतलब नहीं था। न अच्छा न बुरा। अम्बेडकर तो सिर्फ सामाजिक असमानता का लाभ उठानें तक ही पर्याप्त थे। किन्तु मार्क्स को आधार बनाकर बढने वालों ने श्रम को धोखा देने के लिये मानसिक श्रम नामक एक नया शब्द बना लिया जो पूरे पूरे शारीरिक श्रम का हिस्सा निगल गया। बुद्धि जीवियों ने शारीरिक श्रम शोषण के ऐसे ऐसे तरीके खोज लिये कि श्रम और बुद्धि के बीच दूरी लगातार बढतो चली गई । यदि गांधी के अनुसार मशीन और शारीरिक श्रम के बीच कोई मानवीय संतुलन रखा गया होता तो आज जैसी अराजकता नहीं होती। किन्तु मार्क्स वादियों की निगाहें श्रम पर थी और निशाना बुद्धि को लाभ पहुंचाने का। मार्क्स को मानने वाले चीन मे श्रमजीवियो की अमानवीय दशा का वर्णन भी रोगटे खडे करने वाला है। भारत जहॉ समाजवादी लोकतंत्र नामक आंशिक साम्यवाद ही आ पाया किन्तु यहॉ भी श्रम और बुद्धि के बीच लगातार बढता फर्क स्पष्ट है। यदि श्रम की मांग और महत्व बढ जाता तो जातीय आरक्षण की जरूरत ही नही पडती। किन्तु भारत मे सत्ता लोलुप त्रिगुट श्रम मूल्य वृद्धि के प्रयास से ही आतंकित थे। नेहरू के नेतृत्व का कांग्रेसी गुट बुद्धिजीवी पूंजीपतियों का अधिकाधिक सुविधा देकर उनके वोट लेने का प्रयास करता रहा तो साम्यवादी श्रम प्रधान लोगों को बहकाकर उन्हे पूंजीवाद के विरूद्ध नारा लगवाने का औजार मानते रहे और अम्बेडकर वादियों की खास समस्या रही कि यदि श्रम और बुद्धि के बीच की दूरी घट गई तो जातीय आरक्षण महत्वहीन हो जायगा। तीनो के अलग अलग स्वार्थ थे और इस स्वार्थ का उजागर करने वाला कोई था नहीं।

गांधी कट्टर हिन्दू थे। वे मानते थे कि हिन्दू धर्म की वाह्य मान्यताएँ अन्य सभी धर्मो की अपेक्षा अधिक मानवीय है। मार्क्स अपना स्वयं का धर्म चलाना चाहते थे। उनके अनुसार धर्म समाज मे होता है। यदि राज्य ही समाज बनकर समाज के सभी काम करने लगे तो किसी धर्म की जरूरत ही क्या है। अम्बेडकर को हिन्दू धर्म से विशेष द्वेष था। वे बचपन से ही हिन्दू धर्म छोडकर उससे प्रत्यक्ष टकराव चाहते थे। किन्तु गांधी जी ने कडाई से उन्हे रोक दिया। अम्बेडकर बहुत चालाक थे। उन्होने समझा कि कुछ वर्ष हिन्दू ही रहकर उसकी जडो मे मट्ठा डालने का काम क्यो न करें? जहॉ लोहिया जयप्रकाश नेहरू पटेल आर्थिक विषमता को दूर करना अपनी प्राथमिकता घोषित कर रहे थे वहीं अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल के पीछे अपनी सारी शक्ति लगा दी। वे मुसलमान होना चाहते थे किन्तु मुस्लिम महिलाओं को उन्होंने अपने कोड बिल के सुधारवादी कदम से बाहर रखा। रोकने वाला कोई था नही। गांधी थे ही नही, नेहरू जी अंबेडकर से डरते थे। गांधी हत्या के बाद संघ अविश्वसनीय हो चुका था। अम्बेडकर के इस प्रयत्न को कौन रोकता? हिन्दू धर्म के तथाकथित अगुवा सवर्ण स्वयं अवर्ण शोषण के कलंक से मुंह छिपा रहे थे। अम्बेडकर जी हिन्दू कोड बिल बनवाने मे सफल रहे। मुझे आश्चर्य होता है कि गांधी के कट्टर हिन्दू होते हुए भी किसी धूर्त हिन्दुत्व के स्वार्थ पूर्ण प्रचार से प्रभावित होकर किसी हिन्दू ने ही गांधी की हत्या कर दी। मै समझ नही पाता कि हिन्दुत्व का शत्रु कौन? अम्बेडकर, मार्क्स अथवा वह स्वार्थ पूर्ण प्रचार जिसने सत्ता के फेर मे पडकर गांधी को उसमे बाधक मान लिया। कुछ ही वर्ष बाद बात उजागर हो गई जब ऐसे तत्वो ने हिन्दू संगठन के नाम पर अपना अलग राजनैतिक दल बना लिया। मै अब भी मानता हूँ कि हिन्दू धर्म मे आंतरिक बुराइयां थी और अब भी है किन्तु अन्य धर्मो के साथ संबंध मे हिन्दू धर्म के मुकाबले कोई नही। गांधी हिन्दू धर्म की आंतरिक बुराइयों को दूर करना चाहते थे और अम्बेडकर उसका लाभ उठाना चाहते थे यही तो है इनका तुलनात्मक विश्लेषण।

गांधी के बाद गांधी को ठीक से समझने वालो मे दो नाम ही प्रमुख है। (1) राम मनोहर लोहिया (2) जय प्रकाश नारायण। लोहिया जी ने गांधी विचार और मार्क्स के बीच समाजवाद का मार्ग चुना और जे पी मार्क्सवाद से अलग होकर गांधी विचार की लाइन पर आये। दोनो के साथ क्या हुआ यह इतिहास के पन्नो मे अंकित हैं। और कोई गांधीवादी था नही। संघ परिवार गांधी विरोध का प्रत्यक्ष झंडा उठाये घूम रहा था तो साम्यवादी परिवार सर्वोदय मे चुपचाप घुसकर उसका ब्रेन–वाश कर रहा था। ज्योही कोई संघ परिवार से निराश होकर गांधी को समझना चाहता था त्योही ये साम्यवादी उसके खिलाफ दुष्प्रचार शुरू कर देते थे। वेचारे नाना जी देशमुख का उदाहरण आपके सामने है। मेरे साथ भी यही कोशिश हुई किन्तु बंग साहब सिद्धराज जी को मेरे विरूद्ध समझाने मे यह गुट सफल नही सहो सका । अब भी इस गुट ने हार नही मानी है। मैने तो सुना है कि वह गुट कुछ हद तक रामदेव जी के साथ भी तालमेल बिठाने मे सफल हो गया है जो इस लेख का विषय नहीं।

वर्तमान समय मे गाधी विचार को सबसे अधिक साफ साफ समझने वाला एक ही व्यक्ति दिखता है अन्ना हजारे । वैसे तो आर्य भूषण भारद्वाज कृष्ण कुमार खन्ना अविनाश भाई आदि भी हैं जो विचारो के साथ साथ प्रत्यक्ष जीवन मे भी पूर्ण गांधीवादी है किन्तु ऐसे लोग कम ही है। अन्य अनेक गांधीवादियों की तो जीवन स्तर तक ही गांधी की सीमा है। विचारो से कुछ लेना देना नही । एक अन्ना हजारे ऐसे व्यक्तित्व के रूप मे आये जिन्हे गांधी की समझ है। अनेक अम्बेडकर वादी तो बेचारे अन्ना के पीछे पिल पडे है। मार्क्स को मानने वाले अभी अध्ययन कर रहे है। संघ परिवार अन्ततः अन्ना का विरोध ही करेंगा । क्योकि संघ परिवार का उद्देश्य सत्ता है जो अन्ना का नही फिर भी इतिहास साक्षी है कि सत्ता लोलुप कांग्रेसी साम्यवादी संध परिवार अंबेडकर वादियो के लाख दुष्प्रचार के बाद भी सामान्य भारतीय के मन मे आज भी गांधी के प्रति अगाध श्रद्धा है। अन्ना जी के लिये भी यह सामान्य जन मानस की श्रद्धा ही आधार बन सकती है। गांधी मार्क्स और अम्बेडकर तो जा चुके है। अब तो आशा को किरण अन्ना हजारे पर ही टिकी है।

पत्रोत्तर

1 श्री मणीन्द्र नाथ ठाकुर, जनसत्ता अठाइस मार्च बारह

अमेरिका की एक पत्रिका के सर्वे ने यह पाया कि आज के लिए प्रासंगिक चिंतकों में मार्क्स का नाम सबसे उपर है। पिछले कुछ वर्षों में गाधी और आंबेडकर भी विश्व बौद्धिक समाज को बेहद आकर्षित कर रहे हैं। लेकिन इस आकर्षण में एक राज भी छिपा है। गांधी, मार्क्स और आंबेडकर का जिक्र अब जिस तरह से हो रहा है उसमें उनका क्रांतिकारी तेवर गायब होता जा रहा है। सोवियत क्रांति के बाद बहुत–से देशों ने केवल राज्यसत्ता को वैध बनाए रखने के लिए मार्क्स के नाम का उपयोग किया। ठीक उसी तरह जैसे गांधी के नाम का उपयोग भारतीय राज्य ने किया। गांधी को महज महापुरूष, महात्मा और राष्ट्रपिता के रूप में पूज कर उनके संघर्ष के तेवर को कुंद कर दिया गया। आंबेडकर का भी कुछ यही हाल होने जा रहा है। मार्क्स पर कई उतर आधुनिकता के प्रवर्तक कुछ इस प्रकार लिखने लगे हैं कि उनकी एक नई छवि बनती जा रही है। गांधी पर भी

लिखने वाले उदारवादी चिंतकों ने उनकी शांतिप्रियता को ही मूल तथ्य बना डाला है। एक तरफ जहां इनके विचारों से प्रभावित आंदोलन आपस में संवाद नहीं कर पा रहे हैं या एक दूसरे का विरोध करते पाए जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ लोग इनके विचारों की क्रांतिकारिता पर परदा डालने में लगे हैं।

ऐसे में आनंद पटवर्धन की फिल्म 'जय भीम कामरेड' इन तीनों चिंतकों के बीच एक संवाद की संभावना की खोज है। एक मार्क्सवादी कवि, गायक और चिंतक ने आत्महत्या करते समय घर की दीवार पर मोटे अक्षरों में लिख डाला कि 'दलित अस्मिता की लड़ाई लड़ो।' यह आश्चर्यजनक घटना नहीं है, लेकिन इस लिहाज से बेहद महत्वपूर्ण है कि जीवन भर मार्क्स के विचारों पर चलने वाले एक कामरेड ने आत्महत्या क्यों को और उसे दलित अस्मिता इतनी महत्वपूर्ण क्यों लगी।

भारत में ऐसे विचारकों की कमी नहीं है जो दलित चेतना को मानव कल्याण की चेतना से जोड़ कर देखना चाहते हैं। उनके लिए गांधी एक महात्मा हैं जो आंबेडकर जैसे महात्मा के साथ सतत संवाद में लगे रहे। राजनीतिक विरोध परिस्थितिजन्य था, लेकिन वैचारिक साम्यता लक्ष्यजन्य थी। उनके लिए आंबेडकर का बुद्ध और मार्क्स के बीच तुलना करना एक को दूसरे के विरोध में खड़ा करना कतई नहीं था, बल्कि उनके बीच एक संवाद के सूत्र तलाशने का प्रयास था।

इस प्रयास की कुछ आवश्यक शर्ते हैं। पहलो शर्त है कि हमारा लक्ष्य उनके बीच विवाद पैदा करने के बदले तत्कालीन संघर्ष के उनके अनुभवों को आधार बना कर नए संघर्ष की रूपरेखा खड़ी करना हो। वर्चस्व की संरचनाओं को समझने में उनकी मदद लें, विभिन्न मुद्दों पर उनके साथ संवाद कर देश, काल और परिस्थिति के संदर्भ में नई समझ बनाएं, ताकि संघर्ष को आगे बढ़ाया जा सके। संवाद की यह प्रक्रिया दुनिया भर के मुक्ति–संघर्षों के अलावा दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में फल–फूल रही दार्शनिक परंपराओं के साथ भी चलनी चाहिए। आने वाले समय में मुक्ति–संग्राम की दिशा इस बात से तय होगी कि अलग–अलग मुद्दों को लेकर संघर्षरत लोग इन चिंतकों से संवाद किस तरह स्थापित कर पाते हैं। 'जय भीम कामरेड' फिल्म इस दिशा में एक महत्वपूर्ण शुरूआत है।

2 श्री कुलदीप नैयर, पंजाब केशरी पचीस अप्रेल बारह

आस्ट्रेलिया के एक सम्पादक ने जब भारतीय प्रेस से सवाल किया कि पत्रकारिता के क्षेत्र में कोई दलित, अछूत शीर्ष स्थान पर क्यों नहीं है तो मैं परेशान हो गया। मैं इसे एक गलती मानता हूँ जिसे बहुत पहले ठीक कर लिया जाना चाहिए था। मुझे लगा कि अब आगे कोई और देर किए बिना इसे ठीक कर लिया जाएगा।

लेकिन जब कुछ दिन पहले दलितों के गांधी डा. भीम राव अम्बेडकर की 121वीं जयंती पर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया तो मुझे लगा कि दलितों के खिलाफ भेदभाव एक पूर्वाग्रह है जिसे समाप्त होने में दशकों लग जाएंगे। दलित हिंदू समाज के सबसे निचले पायदान पर हैं और उनके खिलाफ बहुत पहले से ही दुराग्रह बना हुआ है। इस दुराग्रह को बनाए रखने में कोई शर्मिंदगी नहीं महसूस की गई है। अनुसूचित जातियों यानी दलितों के लिए आरक्षण का प्रावधान संविधान म है। हालांकि यह प्रावधान उनके विरोध के बावजूद किया गया था। अम्बेडकर आरक्षण के खिलाफ थे। आरक्षण की तुलना उन्होंने बैसाखी से की थी लेकिन उस वक्त तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और कांग्रेस के दूसरे नेता उन पर भारी पड़े और 10 सालों के लिए आरक्षण की व्यवस्था उन्हें स्वीकारनी पड़ी।

उस वक्त अम्बेडकर ने ऐसा नहीं सोचा था कि एक ओर राजनीतिक दल तो दूसरी ओर दलितों के बीच के निहित स्वार्थ वाले, खासकर क्रीमीलेयर वाले लोग आरक्षण की इस व्यवस्था को चुनावी लाभ के लिए लम्बे समय तक खींचते चले जाएंगे। चुनावी लाभ का लोभ इतना बड़ा है कि संसद में बिना किसी बहस के आरक्षण का यह प्रावधान दशक–दर–दशक बढ़ाया जाता रहा है।

हिन्दू समाज को डा. अम्बेडकर और उनके अनुयायियों का आभारी होना चाहिए कि इन लोगों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। भेदभाव से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ इस्लाम धर्म कबूल कर लेने की बात कही तो महात्मा गांधी ने उनसे ऐसा नहीं करने का आग्रह किया और यहां तक कि आमरण अनशन पर बैठ जाने की धमकी दी। डा. अम्बेडकर गांधी की इच्छा के आगे झुक गए लेकिन फिर से हिन्दू धर्म स्वीकारने से इन्कार कर दिया। लेकिन धर्मांतरण से भी दलितों को कोई लाभ नहीं हुआ। इस्लाम, ईसाई या सिख धर्म में भी उनके साथ कमोवेश हिन्दू समाज जैसा ही व्यवहार होता रहा है। हालांकि इस्लाम, ईसाई या सिख धर्म समानता की बात करते हैं लेकिन दलित जहां कहीं भी गए, उन्हें भेदभाव और असहायता दंश झेलना पड़ा। इस तरह हिन्दुत्व के बाहर भी दलितों को जाति व्यवस्था की बुराइयों से मुक्ति नहीं मिली। सच्चर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में इंगित किया है कि इस्लाम धर्म कबूल करने के बाद भी दलितों को अमानवीय व्यवहारों का सामना करना पड़ता है।

आज भी दलित सिर पर मैला ढोते हैं। सरकार इस पर रोक लगाने की बात करती है। यह बात 50 साल पहले ही शुरू की गई थी। उस वक्त भी गृह मंत्रालय ने निर्देश जारी किए थे, लेकिन उस वक्त से आज तक स्थिति में बहुत थोड़ा ही बदलाव आया है क्योंकि सरकार इस प्रचलन को सिर्फ कानून बनाकर रोकने का प्रयास करती रही है। मुझे तो लगता है कि अगर दलित खुद सिर पर मैला ढ़ोने से इन्कार कर दें तो उनकी स्थिति ज्यादा बेहतर हो सकती है लेकिन वे इतने गरीब हैं कि अपनी आजीविका पर लात मारने की हिम्मत नहीं कर सकते।

अब यह बात साफ हो जानी चाहिये कि किसी कानून या किसी सरकारी प्रयास से अस्पृश्यता समाप्त नहीं होने वाली। दरअसल मानसिकता बदले बगैर कामयाबी नहीं हासिल की जा सकती। बच्चे जिस परंपरा और धर्म के नाम पर बड़े हो रहे हैं, वह दुराग्रहपूर्ण है। जब तक समाज को पक्षपाती रवैया छोड़ने को मजबूर नहीं किया जाता तब तक यह स्थिति नहीं बदलने वाली। देश में सामाजिक क्रांति के लिए कोई आंदोलन हो रहा हो, यह मुझे दिख नहीं रहा। उदाहरण स्वरूप लड़कियों को बोझ मानने का प्रचलन है। कितनी बच्चियां गर्भ में या जन्म के बाद मार दी जाती है। यह कोई तसल्ली देने वाला बात नहीं है कि ऐसी वारदातें तो ज्यादातर सिर्फ उत्तर भारत और खासकर पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में ही होती हैं।

मानसिकता बदलने और दामन के धब्बे खत्म करने के लिए निरंतर प्रयास करने का असर बड़े पैमाने पर व्याप्त इन बुराइयों को समाप्त करने पर पड़ सकता है लेकिन ऐसा करने को कोई राजनीतिक दल तैयार नहीं है और न ही कोई एक्टीविस्ट इस दिशा में कुछ सोच रहा है।

उत्तर– आप दोनों ही स्थापित विचारक हैं। आपने गांधी, मार्क्स और अम्बेडकर की तुलना की है। विषय अधिक गंभीर है। मेरी आप सबसे आशिक सहमति तथा व्यापक असहमति है। अतः मैंने इसी अंक में इस संबंध मे एक पूरा लेख लिखना ठीक समझकर मार्क्स गांधी और अम्बेडकर शीर्षक से लिखा है।

आपने दलित शब्द का बार बार उल्लेख किया है। कुछ वर्ष पूर्व दलित शब्द में वे सब लोग आते थे जो समाज में दबे कुचले हैं चाहे ये गरीब हों या हरिजन या आदिवासी। धीरे धीरे कुछ लोगों ने दलित शब्द हरिजन जाति के लिये रिजर्व कर लिया। पहले तो वैश्याएँ भी दलित में ही मानी जाती थीं। आपने जिस वामपंथी नेता की आत्महत्या में दलित शब्द का उल्लेख किया है वह दलित शब्द जाति सूचक न होकर आर्थिक रूप से दबे हुए लोगों के लिये था। उनका आशय दबाये गये वर्ग से था न कि उनका आशय मायावती रामबिलास पासवान और मीरा कुमार से। आप अपनी भूल सुधार लें।

मानव स्वभाव है कि पूर्वाग्रह भुलाये तो जा सकते हैं किन्तु छुड़ाये नहीं जा सकते। दलित पूर्वाग्रह बढ़ने का कारण सिर्फ ये लोग ह जो ऐसे पूर्वाग्रह को भूलने नहीं दे रहे। मौलिक अधिकारो की सुरक्षा आपका अधिकार है। संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा आपका अधिकार न होकर राज्य का कर्तव्य है। इसी तरह सामाजिक अधिकार आपका अधिकार न होकर सामने वाले का कर्तव्य है। आप उसके लिये दावा नहीं कर सकते। समानता किसी भी रूप में मौलिक अधिकार नहीं। स्वतंत्रता हमारा मौलिक अधिकार है। जानकारी के अभाव में हमारे संविधान में समानता को मौलिक अधिकार में डाल दिया गया। आप लोगों ने इस भूल को ठीक करने को अपेक्षा जोर से पकड़ लिया। आश्चर्य है कि कुलदीप नैयर जी सरीखे विद्वान भी मूल अधिकार की ठीक ठीक व्याख्या न करके गलत व्याख्या से चिपटे हुए हैं। समानता का व्यवहार किसी का अधिकार नहीं जो दावा करें।

आप दोनों दलितों के सम्बन्ध में समाज से निवेदन कर रहे हैं या शिकायत। दलित तो शिकायत कर ही नही सकते क्योंकि समानता को मूल अधिकार संविधान ने घोषित किया है, समाज ने नहीं। समाज ने स्वतंत्रता को मूल अधिकार माना है। मेरा आप सबसे निवेदन है कि किसी समाज शास्त्री के साथ बैठकर इन विषयों पर गंभीर चर्चा करिये और तब ऐसे शब्दों का प्रयोग करिये। सामाजिक भेदभाव कानून से मिटाना संभव नहीं। आप कानून से मूल अधिकारों की तो सुरक्षा कर नहीं पा रहे और सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा का दायित्व ले रहे हैं । मूल अधिकारों की सुरक्षा संविधान का दायित्व है। सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा संविधान का दायित्व न होकर कर्तव्य है जो स्वैच्छिक है। आप दायित्व पूरा करते हुए ही स्वैच्छिक कर्तव्य कर सकते हैं, दायित्व की अनदेखी करके नहीं। इन मुद्दों पर विचार करिये। दलित शोषित, पिछड़े आदि शब्दों का अनावश्यक उच्चारण आपको लाभ दे सकता है किन्तु समाधान नहीं दे सकता। समाधान तो सिर्फ एक ही है और वह है समान नागरिक संहिता।

3 श्री रवीन्द्र सिंह तोमर, संवाद सरोवर, गुना, मध्यप्रदेश 473001

विचार– जनवरी 1948 की बात है। दिल्ली के बिड़ला निवास में गांधीजी का अनशन चल रहा था। अनशन कौमी एकता के लिए और भारत सरकार से पाकिस्तान सरकार को 55 करोड़ रूपये प्रेषित करवाने के लिये था। विभाजन के बाद यह रकम अविभाजित हिन्दुस्तान के संयुक्त कोष से पाकिस्तान के हिस्से में आई थी। भारत सरकार उसे दिए बगैर नहीं रहने वाली, प्रश्न है 'टाइमिंग' का। उस तनाव के क्षण देना उचित है या नहीं, सरकार सोच में है। प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल जानते हैं कि अगर यह पैसा उस वक्त पाकिस्तान के हवाले होता है तो कहीं पाकिस्तान सरकार उसका भारत के खिलाफ आक्रामक रवैयों में इस्तेमाल न कर डाले। मसला विचार योग्य और विचाराधीन है।

विलंब से गांधीजी दुखी होते हैं, गवर्नर जनरल, लार्ड माउंनबेटन चिंतित। 'अगर यह रकम भारत से पाकिस्तान को प्रेषित नहीं होती है तो यह स्वतंत्र भारत का सबसे पहला विश्वासघाती कदम होगा। गांधीजी जानते हैं कि अपनी सोच के अनुसार ऐसा निर्णय लेने के लिए सरकार अधिकृत है और उसके नेता सुलझे हुए, समझदार और नेक लोग है। लेकिन गांधीजी की अंतरात्मा नहीं मानती। रूपए को वहां और वहां ही होना चाहिए, जहां उसका स्थान वैध है, उसकी भूमिका उचित है, उसकी मात्रा सही है। अन्य जगह, अन्य भूमिका और मात्रा में नहीं।

अनशन शुरू होता है। सरकार कसौटी पर आ टिकती है। समस्या जटिल है : रकम दे दें और आफत मोल लें? हमारे ही पैसे से खरीदे अस्त्रों का हम सामना करें? हरगिज नहीं। या फिर रकम न दें और गांधीजी को खो दें? अंग्रेज सरकार ने गांधीजी को उपवास में मरने न दिया... आजाद हिंदस्तान की सरकार...? असमंजस गहरा है। गांधीजी की सेहत घंटे–दर–घंटे गिरती है। पाकिस्तान से उखड़े हुए कुछ शरणार्थी बिरला निवास आते हैं व्याकुल, व्यथित और लाजमी गुस्से में। '...पाकिस्तान ने हमारा सर्वनाश कर दिया है.. . और यहां गांधीजी उस मुल्क को रूपए भिजवाना चाहते हैं...'

उस ही वक्त प्रधानमंत्रीजी आ पहुंचते हैं, गांधीजी से मिलने। जैसे छुरी की धार पर खड़े हैं। पंडितजी अंदर गांधीजी के कमरे में जाते हैं, बातें होती हैं... कुछ देर बाद बाहर निकलते हैं... शरणार्थी उत्तेजित हैं। जैसे पंडितजी गाड़ी में बैठने लगते हैं, उनमें से एक बोलता है 'मरने दो गांधी को ...।' गाड़ी में बैठने जा रहे जवाहरलालजी थम जाते हैं। गाड़ी से निकलते हैं। चेहरा लाल, तिलमिलाया हुआ...'किसने कहा यह? बोले...मेरे सामने आकर फिर बोले... हिम्मत है? आए सामने... और पहले मुझे यहां मार डाले...हिम्मत है..?' कोई सामने नहीं आता, भीड़ पिघल जाती है।

सरकार पाकिस्तान को रकम भेज देने को फैसला करती है। गांधीजी का अनशन समाप्त हो जाता है। उनका विश्वास जीतता है। तब पता चलता है कि उस पूरे दौरान जब गांधीजी अनशन पर थे, जवाहरलालजी ने एक दाना अन्न नहीं लिया था। उस सारे समय खुद भूखे रहे... और वह भी अपना पूरा काम, प्रधानमंत्री का ओहदा, निभाते हुए। 'उपवास छोड़ो', गांधीजी उनको लिखते हैं 'बहुत वर्ष जियो और हिंद के जवाहर बने रहो।' इस दरमियान कहीं और कुछ और योजनाएं बनती हैं, जिनका 30 जनवरी को समापन होता है। गांधी चले जाते हैं।

गांधीजी को गए दो महीने भी नही होते हैं कि 1948 की मार्च में सेवाग्राम में एक बैठक होती है। पूर्वनिर्धारित बैठक, जिसमें गांधीजी स्वयं आने वाले थे। अब वह उनके मरणोपरांत होती है। गॉधीजी के अनुयायी एकत्रित हैं। दो किस्म के अनुयायी। एक राजनीतिक और दूसरे गैरराजनीतिक। पहले समूह में जवाहरलालजी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, मौलाना आजाद जैसे अग्रणी, जो कि 'जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों' में से हैं और दूसरे समूह में विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, अर्थशास्त्री जैसी कुमारप्पा, काकासाहेब कालेलकर जैसे 'रचनात्मक कार्यकर्ता।' सभा की विषय–सूची लंबी है, लेकिन अंतर्वस्तु एक है : बापू नहीं रहे : अब हमारी रहनुमाई कौन करेगा?

पंडितजी हिंदुस्तानी में बोलते हैं : 'मैं उलझा–उलझा रहता हूं ...जब भी कुछ लम्हे मिलत हैं सोचने को, तो ख्याल आता है...हमें सरकार में आए एक–डेढ़ बरस हुए हैं... बहुत कुछ किया है और बहुत कुछ नहीं किया है... कुछ अच्छा किया है और कभी–कभी गलत भी... खुशी नहीं होती...' फिर कहते हैं : '... अब देश के सवालों को फिर से नई फिजा की रोशनी में सोचना होगा...'

मार्च 1948 सेवाग्राम की बैठक में कई ज्वलंत प्रश्नों पर बहस होती है। राष्ट्रीय सुरक्षा, युद्ध, शरणार्थियों का भविष्य, सांप्रदायिकता, अन्न–उत्पादन, उद्योगशालाएं, खादी–ग्रामोद्योग, शिक्षा, नारी–उत्थान... लेकिन मार्च 1948 में भ्रष्टाचार एक 'विषय' नहीं बनता। न ही 'काला धन'। तब यह प्रश्न किसी के जेहन में नहीं।

'ये क्या हुआ... कैसे हुआ... क्यों हुआ... जो हुआ' आनंद बक्षी हम सबकी ओर से पूछ रहे हैं। मार्च 1948 के सारे सवाल आज भी मौजूद हैं, प्लस भ्रष्टाचार, प्लस काला धन। 'जिन्हें नाज है हिंद पर वो कहां हैं, कहां हैं, कहां हैं, कहां हैं?' साहिर हम सबों की ओर से पूछ रहे हैं।

वहां, जहां पैसा है, जहां उसकी मौजूदगी अवैध, भूमिका विकृत, मात्रा वीभत्स है। बात सिर्फ राजनीतिज्ञों और अफसर वर्ग की नहीं, सरकार और सियासत की नहीं, हाकिमों और हुकूमत की नहीं। जैसे हम, वैसा हमारा देश। हमारी ही पुरपेच गलियों में, हमारे ही बदनाम बाजारों में होते हैं हमारे गलत सौदे और उन सादों पर तकरार।

आरटीआई अपने में एक नई फिजा है, जो रूपए को देश का सेवक बनाना चाहती है न कि उसका तानाशाह। लोकपाल भी वही जरूरी काम करेगा। पर समाज में जो भ्रष्टाचार है, उसको कौन और कैसे टोकेगा? समाज में जब 'सिद्धांत को मरने दो' सुनाई पड़े कौन कहेगाः 'हिम्मत है? पहले मेरा मुकाबला करो...'

समीक्षा– मैं आपके विचारों से पूरी तरह सहमत हूँ। गांधी जी ने उस समय जो किया वह बिल्कल ठीक था। पचपन करोड़ रूपया पाकिस्तान का था जो भारत पर उधार न होकर अमानत था। चाहे भारत की हार होती या जीत किन्तु अमानत में खयानत करना बिल्कुल भी ठीक नहीं था। मुझे तो आश्चर्य होता है कि गांधी जी को इतनी साफ बात के लिये अनशन करना पड़ा। ऐसा लगता है जैसे उस समय भारत के कुछ प्रमुख हिन्दुओं में आवेश भाव मजबूत हो गया होगा अन्यथा ऐसी गलती चाहे अन्य धर्मावलम्बी भले ही करें किन्तु हिन्दू तो नहीं करता।

सबसे ज्यादा दुख की बात यह है कि पैंसठ वर्ष बाद भी भारत का आम नागरिक यह नहीं जान पाया कि गांधो जी यह पचपन करोड़ रूपया पाकिस्तान को कोई दान नहीं दिलवा रहे थे। यह रूपया तो भारत के पास पाकिस्तान की अमानत था। रणनीति थी कि हम उस युद्ध काल में रूपया न दें और नैतिकता थी कि दे दें। रूपया किसी रूप में भारत का नहीं था यह सच है। गांधी हत्या के बाद गांधी विरोधी इस सच्चाई पर पर्दा डालने में सफल रहे और गांधीवादी इस सत्य को सत्य भी स्थापित नहीं कर सके क्योंकि गांधी विरोधी अपने मिशन के प्रति पूरी तरह इमानदार थे और गांधीवादी गांधी के नाम पर स्वयं को ही स्थापित करने तक सीमित रह। स्पष्ट है कि सघ समर्थक आम नागरिकों का विश्वास प्राप्त करने में सफल रहे और गांधीवादी पूरी तरह असफल। मैं स्वयं यह बात किसी से कहता हूँ तो आम लोग इसे सच नहीं मानते।

पटेल नेहरू और गांधी में बहुत फर्क था। पटेल जी कुछ कुछ तानाशाही विचारों के थे, नेहरू जी लोकतांत्रिक तथा गांधी जी लोक स्वराज्य के पक्षधर। सेवाग्राम बैठक में पटेल जी के ग्रुप ने दबकर नेहरू जी की योजना का साथ दे दिया तथा लोहिया जयप्रकाश जी आदि दबा दिये गये। गांधीवादियों ने भी नेहरू जो का ही साथ दिया और लोहिया, जेपी किनारे हो गये। यदि उस समय विनाबा जी ने थोड़ा भी स्वतंत्र रूख लिया होता तो भारत का राजनैतिक ढांचा कुछ भिन्न ही होता। नेहरू जी पर समाजवाद साम्यवाद का प्रभाव था। संघ परिवार गांधी हत्या के बाद विश्वास के संकट से जूझ रहा था, गांधीवादी सर्वोदय समाज निर्माण के कार्य में लग गया था और लोहिया जेपी अकेले लड़ लड़ कर थक गये। अम्बेडकर को न देश से मतलब था न समाज से। न वे गांधी के पक्ष में थे न विपक्ष में। वे निरंतर अपना अलग वोट बैंक बनाने तक सीमित थे। ऐसे समय में गांधी विरोधी समाज को यह झूठ समझाने में सफल हो गये कि पचपन करोड़ रूपया पाकिस्तान को दिलवाना एक गलत कार्य था। आप जैसे लोग अब भी यदा कदा समाज से यह भ्रम दूर करने का प्रयत्न करते हैं इसके लिये आप बधाई के पात्र हैं।

4 श्री पुन्य प्रसून वाजपेयी, विस्फोट डॉट कॉम से

बस्तर के जंगल में माओवादियों की समानान्तर सरकार की यह पहली तस्वीर थी। संयोग से ठीक दो बरस पहले 6 अप्रैल 2010 को जिस चीतलनार कैंप के 76 सीआरपीएफ जवानों को सेंध लगाकर माओवादियों ने मार दिया था, उसी चीतलनार कैंप से महज 55 किलोमीटर की दूरी पर कलेक्टर एलेक्स मेनन जंगल में बीते 13 दिनों तक रहे। लेकिन सरक्षा बल उन तक नहीं पहुंच सके। जबकि दो बरस पहले गृह मंत्री चिदंबरम ने देश से वादा किया था कि चार बरस में माओवाद को खत्म कर देंगे और नक्सल पर नकेल कसने के साथ साथ विकास का रास्ता भी साथ साथ चलगा। लेकिन इस जमीन का सच है क्या?

तेइस बरस पहले पहली बार नक्सली बस्तर के इस जंगल में पहुंचे। दण्डकारण्य का एलान 1991 में पहली बार बस्तर में किया गया। पहली बार नक्सल पर नकेल कसने के लिये 1992 में बस्तर में तैनात सुरक्षाकर्मियों के लिये 600 करोड़ का बजट बना। लेकिन आजादी के 65 बरस बाद भो बस्तर के इन्हीं जंगला में कोई शिक्षा संस्थान नहीं है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र नहीं हैं। साफ पानी तो दूर, पीने के किसी भी तरह के पानी की कोई व्यवस्था नहीं है। रोजगार तो दूर की गोटी है। तेंदू पत्ता और बांस कटाई भी ठेकेदारों और जंगल अधिकारियो की मिलीभगत के बाद सादेबाजी के जरिये होती है। जहां 250 तेंदू पत्ता की गड्डी की कीमत महज 55 पैसे है और जंगल की लकड़ी या बांस काटने पर सरकारी चालान 50 रूपये का होता है। यह सब 2012 का सच है। जहां सुकमा के कलेक्टर के घर से लेकर चीतलनार के कैंप तक के 100 किलोमीटर के घेरे में सरकार सुरक्षा बलों पर हर साल 250 करोड़ रूपये खर्च दिखा रही है।

1200 सीआरपीएफ जवान और 400 पुलिसकर्मियों के अलावा 350 एसपीओ की तैनाती के बीच यहां के छोटे छोटे 32 गांव में कुल 9000 आदिवासी परिवार रहते हैं। इन आदिवासी परिवारों की हर दिन की आय 3 से 8 रूपये है। समूचे क्षेत्र में हर रविवार और गुरूवार को लगने वाले हाट में अनाज और सब्जी से लेकर बांस की लकड़ी की टोकरी और कच्चे मसाले और महुआ का आदान प्रदान होता है। यानी बार्टर सिस्टम यहां चलता है। रूपया या पैसा नहीं चलता। जितना खर्चा रमन सिंह सरकार और केन्द्र सरकार हर महीने नक्सल पर नकेल कसने की योजनाओं के तहत इन इलाकों में कर रहे हैं, उसका 5 फीसदी भी साल भर में 9 हजार आदिवासी परिवारों पर खर्चा नहीं होता। इसीलिये दिल्ली में गृहमंत्री चिदंबरम की रिपोर्ट और सुकमा के कलेक्टर की रिपोर्ट की जमीन पर आसमान से बड़ा अंतर देखा जा सकता है।

एलेक्स मेनन की रिपोर्ट बताती है कि जीने की न्यूनतम जरूरतों की जिम्मेदारी भी अगर सरकार ले ले तो उन्हीं ग्रामीण आदिवासियों को लग सकता है कि उन्हें आजादी मिल गई जो आज भी सीआरपीएफ की भारी भरकम गाडियों को देखकर घरों में दुबक जाते हैं। सुकमा कलेक्टर के अपहरण से पहले उन्हीं की उस रिपोर्ट को रायपुर में नक्सल विरोधी कैंप में आई जी रैंक के अधिकारी के टेबल पर देखी जा सकती है, जहां एलेक्स ने लिखा है कि दक्षिणी बस्तर में ग्रामीण आदिवासियों के लिय हर गांव को ध्यान में रखकर 10–10 करोड़ की ऐसी योजना बनायी जाये, जिससे बच्चों और बड़े–बुजुर्गों की न्यूनतम जरूरत जो उनके मौलिक अधिकार में शामिल है, उसे मुहैया करा दें तभी मुख्यधारा से सभी को जोड़ने का प्रयास हो सकता है और मौलिक जरूरत की व्याख्या भी बच्चों को पढ़ाने के लिये जंगल स्कूल, भोजन की व्यवस्था, पीने के पानी का इन्फ्रास्ट्रक्चर और बुजुर्गो के इलाज के लिये प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और जंगल में टूटी पेड़ों की टहनियों को जमा करने की इजाजत। साथ ही जगह जगह सामूहिक भोजन देने की व्यवस्था।

लेकिन रायपुर से दिल्ली तक इन जंगलों को लेकर तैयार रिपोट बताती है कि जंगल गांव का जिक्र कहीं है ही नहीं। सिर्फ माओवादी धारा को रोकने के लिये रेड कारिडोर में सेंध लगाने की समूचे आपरेशन का जिक ही है और उस पर भी जंगल के भीतर आधुनिकतम हथियारों के आसरे कैसे पहुंचा जा सकता है और हथियार पहुंचाने के लिये जिन सड़को और जिस इन्फ्रास्ट्रक्चर की जरूरत है, उसके बजट का पूरा खाका हर रिपोर्ट में दर्ज ह। इतना ही नहीं बजट किस तरह किस मद में कितना खर्च होगा अगर सारी रिपोर्ट को मिला दिया जाये तो केन्द्र और राज्य मिलकर माओवाद को खत्म करने के लिये हर बरस ढाई हजार करोड़ चाहते हैं। असल में जमीनी समझ का यही अंतर मध्यस्थों के मार्फत कलेक्टर की रिहाई तो करवाता है और रिहाई के लिये जो सवाल मध्यस्थ उठाते हैं, उस पर यह कहते हुये अपनी सहमति भी दे देता है कि माओवाद का इलाज तो उनके लिये बंदूक ही है। लेकिन जो मुद्दे उठे उसमें सरकार मानती है कि नक्सल कहकर किसी भी आदिवासी को पुलिस–प्रशासन जेल में ठूस सकती है और नक्सल विरोधी अभियान को सफल दिखाने के लिये इस सरल रास्ते का उपयोग बार बार सुरक्षाकर्मियों ने किया। जिस वजह से दो सौ से ज्यादा जेल में बंद आदिवासियों की रिहाई के लिये कानूनी पहल शुरू हो जायेगी। सुरक्षाबलों का जो भी ऑपरेशन दिल्ली और रायपुर के निर्देश पर जंगल में चल रहा है, उसे बंद इसलिये कर दें क्योंकि ऑपरेशन की सफलता के नाम पर बीते तीन बरस में 90 से ज्यादा आदिवासियों को मारा गया है। सरकार ने मरनेवालो पर तो खामोशी बरती लेकिन यह आश्वासन जरूर दिया कि सरक्षाबल बैरक में एक खास वक्त तक रहेंगे।

जो सरकारी योजनाये पैसे की शक्ल में जंगल गांव तक नहीं पहुंच पा रही है उसका पसा बीते दस बरस से खर्च कहां हो जाता है यह सरकार को बताना चाहिये। क्योंकि अगवा कलेक्टर इसी विषय को बार बार उठाते रहे। सरकार के अधिकारियों ने इस पर भी खामोशी बरती लेकिन याजनाओं के तहत आने वाले पैसे के खर्च ना होने पर वापस लौटाने की ईमानदारी बरतने पर अपनी सहमति जरूर दे दी। यानी जो दूरबीन दिल्ली या रायपुर से लगाकर बस्तर के जंगलों को देखा जा सकता है, उसमें तीन सवाल सीधे सामने खड़े हैं। उड़ीसा में विधायक अपहरण से लौटने के बाद विधायकी छोड़ने पर राजी हो जाता है। कलेक्टर थके हारे मानता है कि 13 दिनों में उसने जंगल के बिगड़े हालात देखे वह बतौर कलेक्टर पद पर रहते हुये देख नहीं पा रहा था। माओवादियों के कंधे पर सवार होकर बंगाल में ममता सत्ता पाती है तो जवाब निकलता है कि सत्ता पाने के बाद ममता की तरह माओवादियो के निपटाने में लग जाया जाये या छूटने के बाद कलेक्टर की तरह सुधार का रास्ता पकड़ा जाये? या रिहाई के बाद विधायकी छोड़ कारपोरेट के खनन लूट से आदिवासी ग्रामीण के जीवन को बचाया जाये? असल में इन्हीं सवालों के जवाब में सत्ता की सच्चाई भी है और बस्तर सरीखे माओवाद प्रभावित जंगलो का सच भी।

समीक्षा– बाजपेयी जी ने नक्सलवाद पर एक विवेचना प्रस्तुत करके तीन मौलिक प्रश्न उठाये हैं (1) पिछड़े हुए गांवों में तेज विकास का मार्ग (2) भष्टाचार नियंत्रण का मार्ग (3) माओवादियों को निपटाने का मार्ग। इस विषय पर सर्वसम्मति है कि तीनों ही दिशाओ में काम करना आवश्यक है किन्तु निर्णय यह होना है कि तीनों में सर्वोच्च प्राथमिकता किस लाइन को देना उचित है।

पिछले साठ वर्षों से देखा जा रहा है कि भारत में एक वर्ग ऐसा बना हुआ है जो किसी भी समस्या का कभी कोई समाधान शुरू होने ही नहीं दता। किसी भी समस्या के समाधान की शुरूआत करने के पूर्व सब प्रकार के मार्गों पर गंभीर विचार मंथन एक आवश्यकता होती है। इसका यह अथ नहीं कि विचार मंथन कभी खतम ही न हो। किसी भी समाधान के पक्ष विपक्ष में तर्क उठने स्वाभाविक हैं। तर्कों के बाद स्थापित व्यवस्था द्वारा जो मार्ग निकालकर कार्य प्रारंभ हो उस मार्ग की समीक्षा भी समय समय पर विचारकों को करनी चाहिये किन्तु स्थापित व्यवस्था को कभी किसी नतीजे तक पहुॅचने ही न दिया जाये और यदि व्यवस्था फिर भी प्रयास करे तो उस निर्णय के विरूद्ध धरना प्रदर्शन विरोध और टकराव तक ले जाया जाये तो संदेह होता है कि विरोध कर्ता कहीं पेशेवर विचारक तो नहीं। यह भी संदेह होता है कि कहीं विरोध कर्ता किसी विदेशी, एन जी ओ स्वदेशी संगठन या सरकारी एजेन्ट तो नहीं। यह प्रश्न स्वाभाविक है किसी समस्या के समाधान के लिये अधिकृत व्यवस्था को किसी निष्कर्ष तक पहुॅचने से बार बार रोकने के पीछे उसका उद्देश्य क्या है?

बाजपेयी जी के लेख से यह स्पष्ट है कि लेख विलम्ब के उद्देश्य से न लिखकर मंथन के उद्देश्य तक सीमित है। यह सच है कि बस्तर के एक भाग से भारतीय संविधान की व्यवस्था समाप्त होकर नक्सलवादी व्यवस्था के अन्तर्गत पूरा शासन चल रहा है। यह भी सच है कि नक्सलवादी शासन के पूर्व भी उस क्षेत्र का विकास देश के अन्य क्षेत्रों से बहुत पीछे था। यह भी सच है कि नक्सलवादी शासन आने के बाद भी उस क्षेत्र में कोई सुधार आने की जगह ज्यादा ही हालत बिगड़ो है। नक्सलवादी क्षेत्र और नक्सलवाद मुक्त क्षेत्र के बीच जो क्षेत्र है और जो छत्तीसगढ़ तथा भारत सरकार की व्यवस्था के अन्तर्गत है वहॉ विकास तो संतोषजनक है किन्तु भ्रष्टाचार की मात्रा अन्य दोनों क्षेत्रों से कई गुना ज्यादा है। स्पष्ट है यदि भ्रष्टाचार नहीं होता ता विकास बहुत तेज होता और उसका दूसरे क्षेत्रों पर भी प्रभाव पड़ता।

पहला प्रश्न यह है कि उक्त क्षेत्र का विकास नक्सलवाद आने के पूर्व भी इतना पीछे रहने का कारण क्या है? क्या हमारे व्यवस्थापक जानबूझकर उसे पिछड़ा रखना चाहते थे अथवा क्या भ्रष्टाचार के कारण वह क्षेत्र पिछड़ा या कहीं नीतिगत भूल हुई? मैं इस बात से आश्वस्त हूॅ कि जानबूझकर उस क्षेत्र से कोई अलग व्यवहार नहीं हुआ। भ्रष्टाचार भी वहॉ उसी तरह हुआ जैसा सब जगह हुआ। यदि हमारे क्षेत्र में एक करोड़ रूपया आया और तोस लाख का भ्रष्टाचार हुआ तो उस क्षेत्र में पांच करोड़ आया और ढाई करोड़ भ्रष्टाचार में गया। आपका मानना है कि हमारे क्षेत्र में भ्रष्टाचार तीस प्रतिशत हुआ तो उस क्षेत्र म पचास प्रतिशत हुआ। मेरा मानना है कि भ्रष्टाचार ज्यादा होने के बाद भी वहॉ खर्च हुई वास्तविक राशि हमारे क्षेत्र से बहुत अधिक थी। मेरे विचार से उस क्षेत्र के पिछड़ने का कारण नीतिगत था। वहॉ एक इमानदार, आदिवासी शुभ चिन्तक, जिलाधीश ब्रम्हदेव शर्मा की नीतिगत भूल ने उस क्षेत्र का विकास रोक दिया। कलेक्टर बी डी शर्मा ने एक कानून बनवाकर उस पूरे क्षेत्र में बाहर क लोगों का प्रवेश रोक दिया। शर्मा जी की सोच थी कि बाहर के लोग आदिवासियों का शोषण करेंगे। शर्मा जी ने भ्रष्टाचार के विरूद्ध भी कठोर रुख अपनाया। वह क्षेत्र शोषण और भ्रष्टाचार से तो कुछ बचा किन्तु विकास की कीमत पर। वह क्षेत्र लगातार पिछड़ता चला गया क्योंकि वह क्षेत्र एक अजायब घर सरोखे बाहरी दुनिया से अलग थलग पड़ गया। मेरे विचार में शर्मा जी की इमानदारी और भलमनसाहत भरी गलत नीति बस्तर का विकास रोकने का आधार बनी। आज भी बी डी शर्मा उस क्षेत्र में औद्योगिक विकास में भरसक बाधा पहुॅचाते ही हैं। इस स्थिति का लाभ उठाकर उस क्षेत्र मे 'नक्सलवाद आया।'

शर्मा जी के विषय में यह कहावत प्रचलित है कि जिस क्षेत्र में शर्मा जी चले जायें वहॉ पीछे पीछे नक्सलवाद पहुॅच ही जाता है जबकि शर्मा जी की ऐसी कोई योजना नहीं होती। बस्तर के बाद सन् तिरान्नबे चौरान्नबे में शर्मा जी ने हमारे रामानुजगंज क्षेत्र में जड़ें जमानी शुरू कीं। वहॉ बंग जी के मार्गदर्शन में हम लोग ग्राम सभा सशक्तिकरण का प्रचार करते थे। हमारा नारा था कि हमें सुराज्य नहीं स्वराज्य चाहिये। शर्मा जी को लगा कि इस लोक स्वराज्य अभियान का पूरा संचालन गैर आदिवासी कर रहे हैं तथा इस आंदोलन में आदिवासो विकास की कोई योजना नहीं है। शर्मा जी को यह भी डर लगा कि इन प्रयत्नो से आदिवासियो का तीव्र विकाश होकर आदिवासी गैर आदिवासी का भेद ही मिट जायगा। उनकी सलाह पर तत्कालीन मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह जी ने मुझे और हमारी पूरी टीम को नक्सलवादी घोषित कर दिया। बंग जी अमरनाथ भाई आदि गांधीवादियों ने बहुत समझाया पर ये नहीं माने। उस समय तक सरगुजा में नक्सलवाद नहीं आया था। मैं पहला नक्सलवादो घोषित हुआ। अमानवीय अत्याचार हुए। सर्वोदय की ही एक टीम मुख्यमंत्री के साथ जा मिली जिसका नेतृत्व रामचन्द्र जी राही के पास था। हम न्यायालय से जीत गये। ब्रम्हदेव जी शर्मा इस बीच मजबूत हुए और कहावत के अनुसार दो हजार दो में हमारा पूरा क्षेत्र

नक्सलवादी हो गया। बस्तर क्षेत्र के समान ही इस क्षेत्र में भी नक्सलवादियों की सरकार बन गई। स्वतंत्रता दिवस को सरकारी स्कूलों मे नक्सलवादी झंडे फहरने लगे। जन अदालतों में हजारों आदमी जुटने लगे जहॉ पूरी भीड़ के सामने पीट पीट कर हत्याएँ होने लगी। ब्रम्हदेव शर्मा का सारा अहिंसक ताना बाना नक्सलवाद में बदल गया। हमें भी पहली बार आभास हुआ कि नक्सलवाद कहीं भी व्यवस्था परिवर्तन नहीं है। यह तो शुद्ध अराजकता वाद जिसके गर्भ में सत्ता संघर्ष है। मैंने नक्सलवादी नेताओं को सलाह दी कि आप अपनी सरकार अहिंसक जनमत खड़ा करके चलाइये। यदि पुलिस या सरकार का अत्याचार होगा तो हम आपका साथ देंगे। किन्तु ये नहीं माने। नतीजा हुआ कि हम लोगों ने नक्सलवादियों की हिंसक गतिविधियों का विरोध किया और पुलिस ने चुन चुन कर उनके सभी प्रमुख नेताओं की हत्या कर दी।

प्रश्न उठता है कि नक्सलवाद नियंत्रित या नक्सलवाद प्रभावित क्षेत्रों में पहले तेज विकास हो या पहले नक्सल मुक्ति हो। भ्रष्टाचार राष्ट्रव्यापी समस्या है। सबसे पहले एक छोटे से क्षेत्र का भ्रष्टाचार रूके यह संभव नहीं क्योंकि पूरी की पूरी राजनैतिक प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्ट है तो रोकेगा कौन? क्या भ्रष्टाचार के बहाने अराजकता को छूट देना उचित है? मेरे विचार में नहीं। अब तो या तो ममता दीदी के मार्ग पर पहले नक्सलवाद से निपट लें तब विकास की बात करें या कलेक्टर एलेक्स पाल की योजना अनुसार पहले विकास हो तब नक्सल मुक्ति। मुझे लगता है कि पहले विकास की बात अर्थहीन है क्योंकि नक्सल नियत्रित क्षेत्र में विकास कौन करेगा तथा नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में भी विकास का श्रेय सरकार को जायेगा या नक्सलवादियों को। सरकारी धन में भ्रष्टाचार होगा ही और भ्रष्टाचार का भारी धन नक्सलवादियों के पास जायेगा ही। क्या नक्सल प्रभावित क्षेत्र में नक्सल मुक्ति से पूर्व विकास की गंगा बहाने की सलाह का कोई औचित्य है? बेसिर पैर की सलाह देने वाले की क्षमता या नीयत पर शक पैदा होता है। कलेक्टर मेनन ने जमीनी हकीकत को समझे बिना विकास का जो मार्ग पकडा उसने बहुत नुकसान किया है। सरकार को भी एक हीं मार्ग पकडना होगा कि नक्सल मुक्त क्षेत्र का तीव्र विकास होगा और नकसल प्रभावित क्षेत्रों का द्वितीय प्राथमिकता पर। नक्सल नियंत्रित क्षेत्र में ता किसी विकाश की तब तक बात नहीं हो सकती जब तक पहले वह क्षेत्र सरकारी नियंत्रण में न आ जावे। यदि नक्सल प्रभावित क्षेत्रों के ठीक सटे नक्सल मुक्त क्षेत्र का बहुत तेज विकास होगा तो स्वभाविक है कि नक्सल प्रभावित क्षेत्र भी इस दिशा में सोचना शुरू कर दे।

भारत सरकार ने बहुत विचार करने के बाद एक लाईन पकडी है। छत्तीसगढ़ सरकार से भी तालमेल है। छत्तीसगढ़ का मीडिया जमीनी हकीकत समझ रहा है। बंबई और दिल्ली में बैठकर सलाह देना ठीक नहीं। यदि आप नक्सल समस्या का अध्ययन करना चाहते हैं तो आइये रामानुजगंज। वहां आपको नक्सलवाद पूर्व का भी अनुभव मिलेगा, ब्रम्हदेव शर्मा जी के संगठन का उतार–चढाव भी देखने को मिल जायेगा, नक्सलवादी शासन का भी और नक्सलवाद मुक्त शासन का भी। नक्सलवाद मुक्ति के बाद यहां जितना तेज विकास दिख रहा है वह अभूतपूर्व है। भ्रष्टाचार भी बडी मात्रा में है जिसे राष्ट्रीय समस्या मानकर समाधान के मार्ग तलाशे जा रहे हैं लेकिन जो लोग भ्रष्टाचार का हव्वा खडा करके विकास को ही अवरूद्ध करना चाहते हैं उनकी यहाँ कोई पूछ परख नहीं। यदि वास्तव में कोई नक्सलवाद पर अध्ययन और शोध करना चाहे तो रामानुजगंज क्षेत्र उसके लिये सर्वाधिक उपयुक्त स्थान है। मेरे विचार में भारत में एक भी ऐसी समस्या नहीं है जिसका समाधान कठिन हो। वास्तविक समस्या तो वे लोग हैं जो किसी समाधान पर सिर्फ प्रश्न उठाने तक हीं सीमित हैं। उनके पास सुझाव तो होता नहीं। ऐसी बाधाओं को दूर करना आवश्यक है। नक्सलवाद भी कोई गंभीर समस्या नहीं। पहले ऐसे तत्वों से मुक्ति मिल जाये। सारे देश में नक्सलवाद बढ रहा है सिर्फ रामानुजगंज क्षेत्र में हीं घट रहा हैं। उसका कारण न दैवी चमत्कार है न हीं कोई विशेष सरकारी प्रयत्न। हमने एक साफ लाईन पकडी है। पहले हमने लोकस्वराज्य की स्पष्ट लाईन ली। जिससे अहिंसक व्यवस्था परिवर्तन संभव हो। हमारा सरकार से टकराव हुआ। नक्सलवाद आया। जब नक्सलवाद की पोल खुली तो नक्सलवाद के विरूद्ध भी अभियान चला। खास राज की बात यह थी कि पूरी जनता एकजुट थी। जाति धर्म का भेद नहीं था। दिग्विजय सिंह, अग्निवेश सरीखे लोग अवांछनीय घोषित थे। ब्रम्हदेव शर्मा का पूरा सम्मान था किंतु उनकी सलाह बिना सुने हीं कूडेदान में डाल दी जाती थी। पुलिस विभाग को समाज का इतना विश्वास प्राप्त था कि वे यदि किसी नक्सलवादी को फर्जी मुठभेड में भी मार दे तो पूरी जनता उनका हीं साथ देगी। पेशवर मानवाधिकारियों का इस क्षेत्र में प्रवेश हीं नहीं था। यह क्षेत्र भारत में अकेला वह स्थान है जहाँ ग्राम सभा सशक्तिकरण के अहिंसक गाँधोवादी तरीके से नक्सलवाद लगातार पीछे हटने को मजबूर हुआ। आज प्रसिद्ध गांधीवादी ठाकुरदास बंग स्वास्थ्य की कमजोरी और उम्र के कारण प्रत्यक्ष रूप से यहाँ नहीं आ पाते हैं किन्तु अविनाश भाई उनकी जगह कार्य को आगे बढा रहे हैं। मुझे विश्वास है कि पूरे भारत से नक्सलवाद मुक्ति का यही प्रयोग सफल हो सकता है।

ए टूॅ जेड न्युज चैनल मे मेरे विचारो का सार संक्षेप

कृत्रिम उर्जा

दुनिया मे दो प्रकार के देश होते हैं (1) श्रम अभाव देश (2) श्रम बहुल देश। श्रम अभाव देशों मे श्रम बुद्धि और धन के बीच कम अंतर होता है। श्रम का मूल्य बहुत ज्यादा होने से वहॉ के नागरिकों को श्रम के विकल्प के रूप मे सस्ती कृत्रिम उर्जा डीजल, पेट्रोल, बिजली, गैस, किरासन, कोयला का विकल्प देना सरकार की मजबूरी होती है। श्रम बहुल देशों को इसके ठीक विपरीत कृत्रिम उर्जा को श्रम का प्रतिस्पर्धी मानकर ऐसी मूल्य नीति रखनी चाहिये जिससे श्रम की मांग बढ़े और श्रम, बुद्धि और धन के बीच की दूरी बढती न चली जावे। भारत एक श्रम बहुल देश है किन्तु स्वतंत्रता के तत्काल बाद भारत की अर्थनीति मे बुद्धिजीवी पूंजीपति गठजोड का एकाधिकार हो गया। इन्होने श्रम शोषण के उद्देश्य से भारत मे ऐसी अर्थनीति बनाई कि श्रम बुद्धि और धन के बीच दूरी लगातार बढती चली गई। श्रम बहुल देश मे कृत्रिम उर्जा श्रम शोषण का आधार बनती है। ये बुद्धिजीवी पूंजीपति अच्छी तरह जानते थे कि भारत श्रम बहुल देश है किन्तु इन्होने षणयंत्र पूर्वक श्रम मूल्य की तुलना मे कृत्रिम उर्जा का मूल्य बहुत कम रखा क्योकि कृत्रिम उर्जा का मूल्य बढने से श्रम की मांग बढती है परिणम स्वरूप श्रम कर मूल्य बढता है जिसका लाभ श्रम बेचने वालो को होता और हानि श्रम खरीदने वालो को। स्पष्ट है कि गरीब तथा श्रम जीवी आम तौर पर श्रम बेचने वालों मे शामिल होते है तथा बुद्धिजीवी पूंजीपति श्रम खरीदने वालों मे । इस श्रम शोषण के षणयंत्र का नेतृत्व किया वामपंथियो ने और लाभ उठाया पूंजीपतियो ने। वामपथियों समाजवादियों ने लगातार कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि का विरोध किया क्योकि यदि कृत्रिम उर्जा मूल्य बढने से श्रम का मूल्य बढ जाता तो भारत मे गरीब अमीर का टकराव नही होता जो वामपंथियो की सफलता के लिये आवश्यक मजबूरी है। वामपंथियो की खाडी देशो के साथ भो गुप्त सहानुभूति या समझौता रहा है । यह भी उनके विरोध की मजबूरी थी।

इन श्रम शोषण करने वालो ने इससे भी गन्दा काम यह किया कि इन्होने श्रम उत्पादन उपभोग की वस्तुओ पर भारी कर लगा दिये। साइकिल पर प्रति साइकिल चार सौ रूपया टैक्स लेना और रसोई गैस पर तीन सौ रूपया छूट, देने से इनकी नीयत साफ हो जाती है । सब प्रकार के कृषि उत्पादो पर भी भारी कर लगाकर सस्ती बिजली सस्ता आवागमन की प्रथा पूरे भारत मे आज तक प्रचलित है।

श्रम शोषण की अर्थनीति को पलटना होगा। कृत्रिम उर्जा की बहुत भारी मूल्य वृद्धि करके गरीब गामीण श्रमजीवी किसान के उत्पादन उपभोग की वस्तुएं कर मुक्त करनी होंगी। बुद्धिजीवी पूंजीपति गठजोड रूपी षणयंत्र को तोडना ही हमारी अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान हैं।

कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्य वृद्धि हमारी सभी आर्थिक समस्याओं का भी एक मात्र समाधान है। इसस श्रम बुद्धि और धन के बीच का अंतर घटेगा , गरीब अमीर के बीच की दूरी घटेगी, शहरो की आबादी की गांवों की ओर वापसी होगी, डीजल पेट्रोल गैस की खपत घटने से विदेशी मद्रा बचेगी, पर्यावरण प्रदूषण घटेगा तथा ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मजबूत होकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को कमजोर करेगी। एक बिन्दु कर होने से भ्रष्टाचार भी घटेगा।

इससे कुछ लोगों को परेशानी भी होगी । आवागमन महंगा होगा। खाडी देश नाराज होकर हमारे कुछ राजनेताओं की गुप्त सहायता रोक सकते है । आयात के साथ साथ निर्यात पर भी कुछ विपरीत प्रभाव पडेगा। किन्तु लाभ की तुलना मे हानि की मात्रा नगण्य ही है। एक आकलन के अनुसार यदि कृत्रिम उर्जा का बाजार मूल्य दो गुना कर दे तो प्रति व्यक्ति प्रतिमाह दो हजार रूपया कृत्रिम उर्जा सब्सीडी के रूप मे दिया जा सकता है। अन्य कई प्रकार के टैक्स हटाने के बाद भी।

हमारे भारत के राजनेता सरकारी खजाना भरने के लिये कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि करने का ढोंग करते है। इस कारण जनता ऐसी मूल्य वृद्धि का विरोध करती है । साथ मे खाडी देशो के एजेन्ट राजनेता भी विरोध का वातावरण बनाते है। यदि एक बार एक पृथक कोष बनाकर टैक्स वृद्धि के साथ अन्य राहत को जोडकर एक साथ घोषणा कर दे तो ऐसी मूल्य वृद्धि का विरोध न होकर स्वागत होगा।
विस्तृत वार्ता ए टू जेड चैनल मे दिनांक 20 मई को सायं 7 से 8 प्रसारित की गई

उत्तरार्ध

लोक स्वराज्य ग्राम स्वराज्य व्यवहार मे। द्वारा–अविनाश भाई
छत्तीसगढ़ के जिले सरगुजा के रामचंदर पुर विकास खंड के 130 गांवो मे ग्राम सभा सशक्तिकरण अभियान के अन्तर्गत सम्बोधन, विचार–प्रचार, संगठन, शिक्षण, प्रशिक्षण आदि की दृष्टि से, कम से कम 7–8 बार भ्रमण हो चुका था, पुनः ग्राम के लोगों के विचार और दृढ हो, यह सोचकर 23 जनवरी 2012 से 2 मार्च 2012 तक की वाहन यात्रा चली, जिसमे प्रत्येक दिन तीन ग्राम सभाओं मे पूर्व योंजना के तहत कार्यक्रम पूरे हुए।
23 जनवरी 2012 को यात्रा का शुभारंभ सवेरे 9 बजे जिला बलरामपुर के रामानुजगंज से हुआ। कडाके की सर्दी थीं शीतलहरी अपने पूरे उफान पर थी। इस शीतलहरी मे भी सभी के हौसले बुलंद थे और पूरे 40 दिनों का कार्यक्रम पूरा करने की उमंग थी। योजना बनाने वालों ने बीच मे किसी भी दिन विश्राम के लिये नही रखा था, ताकि कार्यक्रम 40 दिनो मे पूरा हो जाय।
यात्रा शुरू होने से पहले आयोजका ने रामानजगंज मे, आर्य समाज की रीत नीति से यज्ञ कराया, जो आधा घंटे चला। किसी शुभ कार्यक्रम से पहले, परमात्मा का स्मरण शुभ प्रेरणाए भर देता है। कार्यक्रम के मुख्य आयोजक एंव प्रेरणा के श्रोत श्री बजरंग लाल अग्रवाल, रामानुजगंज नगर के 14–15 विशिष्ट साथियो के साथ आधे घंटे के लिये यात्रा मे शामिल हुए और यात्रियो की टोली को शुभ कामनाएं दी। उसके बाद सभी साथी लौट गये । अब यात्रा पूरी तरह मेर सुपुर्द थी मेरे साथ दो प्रमुख साथी श्री रामराज गुप्ता (उन 130 ग्राम सभाओ के साथियो द्वारा सर्व सम्मति से चुने गये अध्यक्ष, जिनके उपर उन 130 ग्राम सभाओ का दायित्व था) तथा श्री सुनिल विश्वास (उन 130 ग्राम सभाओ के साथियो द्वारा चुने गये संगठन मंत्री, जिनपर इन 130 ग्राम सभाओ को ठीक से संगठित करने का दायित्व था।) पूरे 40 दिन मेरे साथ रहने वाले थे और साथ ही साथ मेरे दाये और बाय हाथ भी थे। दुर्ग जिले के वरिष्ठ एवं अनुभवी साथी श्री राकेश शुक्ला लगभग एक सप्ताह यात्रा मे रहे और यात्रा का मार्ग दर्शन किया। श्री राम सेवक गुप्ता मंत्री ग्राम सभा सशक्तिकरण अभियान का सान्निध्य भी जब तब मिलता रहा। श्री रधुनाथ ठाकुर तथा श्री जगत प्रजापति भी कभी कभी यात्रा मे साथ रहे।

किसी गांव मे सभा से पहले पूर्व तैयारी एक दिन पहले या कुछ घंटों पहले की जाती रही, ताकि यात्रा टोली के पहुॅचते ही गांव के लोग जुट जाय। पहली सभा निर्धारित गांव मे 11 बजे दूसरी सभा 2 बजे और तीसरी सभा 5 बज के लगभग होती थी। सारे गांव आदिवासी बहुल गांव है। वे पूरी तरह साधन सम्पन्न नहीं है। इसलिये वाहन (बोलेरो) पर माईक, लाउडस्पीकर , नास्ता, दोपहर का भोजन दो दरिया आदि सामान साथ मे रहता था। इस यात्रा मे एक खास बात यह थी कि प्रत्येक गांव मे लोक पंचो (जिन्होने इस अभियान के तहत पूर्व की सभाओ मे ग्राम सभाओ की बैठक जो आम तौर पर सरपंच द्वारा नही बुलाई जाती थी, या कागज पर बुलाई जाती थी विधिवत रूप से कराने, आगे से पंचायत मे भ्रष्टाचार नही होने देने के संकल्प लिये थे।) से एक प्रकार के सर्वेक्षण पत्रक भरवाय जाते थे। उनका नमूना इस प्रकार है।

1. ग्राम का नाम
2. जनसंख्या
3 सरकारी कर्मचारियों का व्यवहार (क) अच्छा (ख) बुरा (ग) बहुत बुरा
4. सरपंच का जनता से व्यवहार (क) अच्छा (ख) सामान्य (ग) खराब
5. सरपंच का भ्रष्टाचार (क) शून्यवत (ख) कम (ग) अधिक (घ) बहुत अधिक
6 सरपंच किस दल से जुडा हैं (क) निर्दलीय (ख) पैलेस समर्थक (ग) वृहस्पति जी समर्थक (घ) राम विचार जी समर्थक
7 पंच का नाम जो ज्यादा भ्रष्ट हो
8 किसी दादा या गुण्डे का नाम – जिससे गांव के लोग डरते हो
9 पंचायत सचिव का भ्रष्टाचार (क) शून्यवत (ख) कम (ग) अधिक (घ) बहुत अधिक
10 नक्सलवादी भय (क) नही है (ख)कम है (ग) बहुत है
11 हिन्दु मुसलमान विद्वेष (क) नही है। (ख) घट रहा है (ग) बढ रहा है
12 जातीय टकराव (क) नही है। (ख) घट रहा है (ग) बढ रहा है
13 पिछले छ माह से कुल मिलाकर वर्तमान स्थिति (क) वैसा ही (ख) अच्छा है (ग) खराब है

इस पत्रक पर पत्रक भरने वाले लोक पंच से अपने हस्ताक्षर करने या अगुंठा लगाने को मना किया गया, ताकि कोई भी लोकपंच उलझन मे न फसे । तो फिर ऐसे पत्रक का फायदा क्या? फायदा यह है कि इस पत्रक के भरने से पूरे गांव की स्थिति का पता जरूर चल सकेगा। लाकपंच के बारे मे उपर लिखा ही है कि वे कौन लोग होते है, लेकिन पच वे लोग होते है , जो सरकारी पंचायत से संबंधित होते है।

एक कमजोरी यह जरूर रही कि इस अभियान के तहत पूर्व मे बुलाई गयी ग्राम सभाओ ने जो लोकपंच चुने थे, उनकी उपस्थिति संतोष जनक नही रही। 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक ही उनकी उपस्थिति रहती थी। लेकिन एक अच्छी बात यह रही कि इस वर्तमान यात्रा के तहत हुई ग्राम सभाओ मे कई युवा भाई बहन नये लोकपंच बनने के लिये स्वयं हाथ उठाते थे। उन्ह लोकपंच बनाया भी जाता था। ये लोकपंच पिछले लाक पंचो से ज्यादा महत्व के हो सकते है, क्योकि पिछले लोक पंचों को प्रत्यक्ष रूप से ग्राम सभा ने चुना था लेकिन इस बार के अभियान मे साथियो ने स्वेच्छा से नाम दिये। स्वेच्छित सेवा का महत्व तो ज्यादा होता है। इससे कुछ नई जागृति आने की संभावना जरूर बनती है।

शीतलहरी के चलते रहने पर भी यात्रा बिना रूके 40 दिनो तक चली । हॉ! हम तीनो सर्दी खासी के शिकार जरूर हुए । हमारे दो साथो 5–6 दिनो के लिये। मै 10 दिनो तक सर्दी खासी के पीडित रहा और इन 10–12 दिनो मे यात्रा मे शामिल नही हो सका और उपयुक्त इलाज तथा पूर्ण विश्राम किया लेकिन हमारे दांय बांय हाथ श्री रामराज गुप्ता एंव श्री सुनील विश्वास पूरी कुशलता से यात्रा का संचालन करते रहे। यहॉ पर गांवो एंव पंचायता के नाम लिखना संभव नही है क्योकि 40 दिनो मे यात्रा ने सभी 130 गांवो से संपर्क करने का प्रयास किया।

कुछ गांवो की थोडी सी बाते लिख रहे है

1. कनकपुर, चुमरा और दोलंगी गांव पूरी तरह मुसलमानो के थे । इन गांवो मे ग्राम सभा सशक्तिकरण के लिये इस्लाम धर्म के आधार पर भी काफी विस्तार से समझाया गया। उन्हे बताया गया कि किसी भी धर्म के मानने वाले को इस बात की जांच तो करनी ही चाहिये कि क्या वह कुरान या इस्लाम धर्म का पालन ठीक से कर रहा है? इसकी परीक्षा इसी बात से हो सकती है कि हम अपने गांव मे इस्लाम धर्म की बुनियादी चीजो नेक–नियत, इमान और भाई–चारा का अभ्यास अपने गांव मे करें । यदि ऐसा करेगे तो ग्राम सभा सशक्त बनगी और इस्लाम धर्म का पालन भी होगा। सच्चे हिन्दू और सच्चे मुसलमान मे कभी टकराव होता ही नही है। नकली हिन्दू और नकली मुसलमान मे ही झगडे होते है ।
2 ग्राम नवापारा मे यह देखकर अच्छा लगा कि इस अभियान के तहत ग्रामसभा की बैठकों की कार्यवाही तथा पारित प्रस्ताव रजिस्टर पर लिखे जाते है। ग्राम सभा ने यह भी तय किया है कि बिना ग्रामसभा की अनुमति के कोई पुलिस के पास नही जायेगा और ग्राम सभा की बैठक मे सभी को उपस्थित रहना होगा।

3 अनेक गांवो मे बहनो की उपस्थिति पुरूषो के मुकाबले सन्तोषजनक रही व 8–10–20–30 तक आ जाती थी। एक गांव लुरगुठा मे महिलाए थी 14 और पुरूष थे 10

4 ग्राम बुलगांव मे सवाल उठा कि जैसा आप बता रहे है, तो क्या पटवारी पट्टा दे सकेगा? ग्रामसभा की बैठक कभी होती भी है? तब उन्हे बताया गया कि हम वर्तमान गांव की बात नही बल्कि उन नये गांवो की बात कर रह है, जिन्ह अभी जन्म लेना बाकी है ।" सभा मे पुनः विस्तार से समझाया गया लेकिन प्रश्नकर्ता व्यख्यान के बीच मे उठ कर चले गये।

5 ग्राम दामोदर पुर मे हमसे पूछा गया कि इस सभा का मुखिया कौन है? तब हमने अपने साथियो से कहा कि आगे से हर ग्रामसभा का सिर्फ उस समय के लिये ग्रामसभा की सहमति से उस ग्राम सभा का अध्यक्ष चुन लिया जाय जिसकी अध्यक्षता मे उस ग्रामसभा का उस दिन संचालन हो।

6 ग्राम केवली मे हमसे पूछा गया कि लोग मालिक कैसे हो गये? उन्हे बताया गया जिसके वोट से केन्द्र तथा राज्यो की सरकारे बन और बिगड सकती है तो वह सभी नेताओ प्रतिनिधियो, अधिकारियो, से बडा हुआ या नही? लोग उन्हे चुनते है और वे चुने जाते है , तो चुनने वाला ही बडा हुआ, जो चुना गया वह तो सेवक ही हुआ।

7 अनेक गांवो मे हमने लोगो से पूछा कि गांव का ऐसा नेता कौन हो सकता है जो गांव के सब लोगो के बारे मे सोचे, झूठ व छल कपट न करे । मैने समझाया कि ऐसा नेता व्यक्ति नही हो सकता। वह तो सिर्फ ग्रामसभा ही है क्योकि वह गांव की माता है, सभी का ख्याल करने वाली है और छलकपट से दूर है। हमे ऐसा ही नेता अपनी सामूहिक शक्ति से सृजन करना चाहिये।

8 प्रायः हर गांव मे समझाया गया कि सरकारी सर्वे को मारा गोली । ग्रामसभा की सहमति से गांव के कुछ युवा साथी ही सर्वे करे, वही सच्चा सर्वे हो सकता है। पंचायत सचिव के द्वारा किया गया सर्वे नही। यदि विवाद उठे तो ग्राम सभा 51 प्रतिशत के बहुमत से प्रस्ताव पारित हो कि सरकारी सर्वे झुठा, गांव के युवाओ द्वारा किया गया सर्वे ही सच्चा और निश्पक्ष है। ऐसा प्रस्ताव पारित होते ही पंचायत को आपकी बात मानने के लिये बाध्य होना पडेगा। सरकारी सर्वे की जरूरत ही नही होनी चाहिये।

8 एक गांव मे अच्छी सभा लगो हुई थी। काफी लोग थे। व्याख्यान के बाद मैने पूछा, कि कुछ सवाल करे। किसी ने सवाल नही किये लेकिन अकेली औरत ने, जो उस सभा मे एक औरत थी अपनी बात कहने की हिम्मत भरी सभा मे कीं। मैने लोगो से कहा कि औरत ने सच कहा या झुठ , यह अलग बात है लेकिन उसने अकेले ही कहने का साहस किया। मैने पूछा कि आप लोग अपने मुंह पर लगे ताले कब खोलेगें?

10 ग्राम आबादी मे दो लोगो ने कहा कि वे अप्रेल म पंचायत द्वारा बुलाई जाने वाली ग्रामसभा मे 25–25 लोगो को सभा मे लाने का प्रयास करेंगे ताकि सभा मे प्रत्यक्ष रूप से लोगा का वर्चस्व रहे, सरपंच या पंचात सचिव का नही।

11 वह बात अच्छी नही लगी कि तमाम प्रयासो के बावजूद ग्राम प्रमुख तथा लोक प्रमुख जैसे महत्वपूर्ण लोग भी लगभग 50 प्रतिशत ग्रामसभाओ मे उपस्थित नही रहे। ग्राम बरवाडीह मे चार साथी ही उपस्थित हुए । तीन ग्रामवासी और एक ग्राम प्रमुख।

12 ग्राम गाजर मे सरकार द्वारा बुलाई गयी ग्रामसभा की बैठक मे भी हम सब शामिल हुए । अध्यक्षता गांव के एक वरिष्ठ साथी ने की। हमारे साथी श्री रामराज गुप्ता ने उस ग्रामसभा का अच्छा मार्गदर्शन किया जिसे सरपंच, पंचायत सचिव को भी मानना पडा।

13 तकिया टाला की सभा मे एक साथी ने कहा कि असली समस्या डर है और अनेक प्रसंगो मे उसके सच कहने पर उसकी पिटाई–ठुकाई भी हो सकती है। उन्हे विस्तार से समझाया गया कि ग्रामसभा का सशक्तिकरण तभी संभव है जब गांव के लोग डर और प्रलोभन से उपर उठे । कभी कभी कष्ट सामने आ सकता है लेकिन दिलेरी से सहने और ग्रमसभा सशक्तिकरण के बारे मे बोलन तथा करते रहने मे ही सफलता का रहस्य छुपा हुआ है।

14 जिस प्रमुख उद्देश्य के लिये हमने यह यात्रा का थी वह था कि हम सिर्फ लोकपंचों की ही बैठक बुलायेंगे और उन्ही का पुनः प्रशिक्षित करने का प्रयास करेंगे, क्योकि इन्होने ही ग्रामसभा सशक्तिकरण की खास जिम्मेवारी ली थी, जिसे वे नही निभा सके और सभा के भी अच्छी उपस्थिति नही दे सके। हम आशा कर सकते है कि अगले अभियानों मे यह चीज प्राप्त कर ली जायेगी।

15 प्रोग्राम ठीक नही बना। 7 दिनो की यात्रा के बाद 2 दिनो का विश्राम रहता तो थकान नही मालूम पडती। हमलोग वाहन से यात्रा के लिये सबेरे 10 बजे निकल जाते थे और शाम 7 बजे तक अपने निवास रामानुजगंज लौट आते थे। फिर दिन मे तीन पडाव नही, दो ही पडाव रखे जाते तो ठीक रहता। हमे तीन गांव ऐसे भी मिले जहा प्रत्येक गांव मे हम तीन तीन दिन तक ठहरे रहे और वहॉ से दूसरे गांव के जाना आना करते रहे । इन तीन गांवो के लोगो ने हम पूरी सहानुभूति के साथ ठहराया।

16 एक बात विशेष ढंग से ग्रामसभाओ मे समझायी जाती रही। वह यह कि यदि गांव मे कुछ अनीति हुई हो। अनीति करने वाले व्यक्ति ध्यान नही दे रहे हो, तो अब संघर्ष करने लडाई लडने घेराव आन्दोलन प्रदर्शन नारेबाजी आदि कुछ भी करने की जरूरत नही पडेगी। आप लोग उस सच्ची बात को सभा मे रखने हेतु 10–12 लोगो को तैयार करे। ग्राम सभा मे वे अपनी बात कहे। उस अनीति के विरोध मे ग्रामसभा मे कम से कम 51 प्रतिशत के बहुमत से प्रस्ताव पारित करवाये, तो फिर वह काम होना ही है। पंचायत सचिव दौड दौड कर उसके क्रियान्वयन मे जुटेगें ही। ऐसा नियम भी है । कार्य न करने पर पंचायत सचिव को शासन द्वारा दण्डित या बरखास्त भी किया जा सकता है। अब इस तरह अनीति को रोकना कितना आसान हो गया है। 51 प्रतिशत के बहुमत से अनीति करने वालो के विरूद्ध ग्रामसभा मे प्रस्ताव पारित करवायें । बस। यह भी बताया गया कि यदि 51 प्रतिशत के बहुमत से ग्रामसभा का प्रस्ताव पारित होता है तो उसे रदद करने की ताकत संसद विधानसभा, सर्वोच्च न्यायपालिका, राजनेताओ, आई ए एस अधिकारियों की भी नही है, क्योकि देश के वास्तविक मालिको द्वारा प्रत्यक्ष रूप से पारित किया गया प्रस्ताव जो है। पंचायत कानून मे इस विषय का उल्लेख है। हमारे विशिष्ट एवं अनुभवी बुजुर्ग साथी श्री राकेश शुक्ल ने इस दिशा मे पहल करने की विशेष जिम्मेवारी ली अैर बताया कि पंचायत सचिव या सरपंच द्वारा उस प्रस्ताव के क्रियान्वयन नही करने की स्थिति मे वे जिलाधिकारी तक से मिलेंगे, ताकि प्रस्ताव क्रियान्वयन हो सके।

मैने कई जगह श्री रामराज गुप्ता को मुख्य व्याख्यान करने तथा श्री सुनील विश्वास को विषय प्रवेश कराने हेतु अनुरोध किया । श्री रामराज को 1 घंट तथा श्री सुनिल विश्वास को 30 मिनट का समय दिया। तब मुझे अनुभव आया कि सीमित ढंग से जो बाते कहने बताने योग्य है ग्रामसभा मे वे सारी बाते ये दोनो साथी बहुत कुशलता के साथ रख सकते है। उनमे त्वरा भी है। वे युवा भी है, शौक भी है और अब अनुभव भी हो गया है। उन दोनो की कुशलताओं को देखकर मुझ आनंद हुआ क्योकि मेरा लक्ष्य किसी क्षेत्र मे ऐसे लोगो को खोजना है जो स्थानीय हो, बाहर के नही। बाहर के आदमी तो कभी कभी आयेंगे। लेकिन स्थानोय साथी तो वही रहेगे और ज्यादा समय देकर गांव के लोगो का मार्गदर्शन कर सकते है। अभी गांव वालो को सीमित संदर्भ मे ही बाते बताई जा रही है। उससे ज्यादा बताने की जरूरत नही है क्योकि अधिक बाते उन्हे पचेगी नही । आर इस तरह अभी किसी बाहरी व्यक्ति की बहुत ज्यादा जरूरत नही है, श्री बजरंग लाल अग्रवाल की भी नही, श्री राकेश शुक्ला की भी नही और मेरी भी नहीं। कोई विशेष प्रशिक्षण शिविर या अनेक गांव के प्रतिनिधियो का जुटान हो तो अलग बात है। इसलिये इन दोनो साथियों का पूरा अवसर भी देना चाहिये और साधन भी। उनकी कुशलताओ को देखकर मै काफी निश्चिन्त हो गया था और मै बहुतेरी सभाओ मे श्री रामराज को 1 घंटा तथा श्री सुनिल विश्वास को 30 मिनट का समय देता रहा। 20 मिनट सर्वेक्षण पत्रक के भरवाने मे भी जाते थे। सो मै बहुत सी ग्रामसभाओ के अंत म बस 10 मिनट ही बाला और कही कही तो मुझे उस की भी जरूरत नही पडी। मेरे खयाल से अभियान के व्यवस्थापको को इन दोनो मित्रो को प्रचार प्रसार हेतु आवश्यक अवसर तथा सुविधाए देनी चाहिये। ऐसा उनके अनुरोध किया जा रहा है। ऐसे स्थानीय साथियो के मिलने से ग्रामस्वराज्य बहुत दूर नहीं है।